ला.द. ग्रंथमाला : १६९

जैन धर्म में पर्याय की अवधारणा

संपादक:
डो. सिद्धेश्वर भट्ट
डो. जितेन्द्र बी. शाह

294.41
BHA-J
G-6633

लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर
अहमदाबाद

Scanned by CamScanner

J.V.B. INSTITUTE
Central Library
LADNUN (RAJ.)
Jain Vishva Bharati Institute
Accession No. G-6633

294.41
BHA-J

जैन धर्म में पर्याय की अवधारणा

Jain Dharma me Paryaay kī avadhāraṇā

Editors :
Dr. S. R. Bhatt
Dr. J. B. Shah

Published by
Dr. J. B. Shah
Director
L. D. Institute of Indology
Ahmedabad 380 009 (India)
Phone : (079) 26302463 Fax : 26307326
ldindology@gmail.com

© L. D. Institute of Indology

Copies : 500

Price : Rs. 300/-

ISBN : 81-85857-53-9

Printed by
Navprabhat Printing Press
Ahmedabad 380 016
M : 9825598855

४

द्रव्य-गुण-पर्याय : भेदाभेद

समणी ऋजुप्रज्ञा

भगवान महावीर ने प्रत्येक तत्त्व की व्याख्या 'परिणामी नित्यवाद' के आधार पर की है। इस सिद्धान्त के अनुसार विश्व का कोई भी तत्त्व न सर्वथा नित्य है और न सर्वथा अनित्य, अपितु प्रत्येक तत्त्व नित्य और अनित्य की स्वाभाविक समन्विति है। तत्त्व का अस्तित्व ध्रुव है, इसलिए वह नित्य है, किन्तु ध्रुव परिणमनशून्य नहीं होता इसलिए वह अनित्य भी है।

जैन दर्शन के अनुसार उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य की समन्वित अवस्था सत् कहलाती है।[१] द्रव्य वही है जो सत् हो। बौद्ध दार्शनिक सत् को एकान्त अनित्य एवं वेदान्ती सत् को एकान्त नित्य मानते हैं। परन्तु जैन दर्शन के अनुसार प्रत्येक तत्त्व उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य इन तीन धर्मों का समवाय है। उत्पाद और व्यय परिवर्तन के सूचक हैं तथा ध्रौव्य अपरिवर्तन अथवा स्थिरता का सूचक है। **भगवती सूत्र** का '**अथिरे पल्लोहई थिरे न पल्लोहई**'[२] इसी तथ्य का संकेत करता है। वस्तु का अस्थिरांश उत्पाद-व्यय या पर्याय कहलाता है तथा स्थिरांश ध्रौव्य अथवा द्रव्य कहलाता है।

द्रव्य-गुण-पर्याय के पारस्परिक सम्बन्ध को जानने से पूर्व संक्षेप में इनके स्वरूप को जानना आवश्यक है।

द्रव्य –

जैन-साहित्य में उपलब्ध द्रव्य के विवेचन को अनेक दृष्टियों से व्याख्यायित किया जा सकता है –

(१) **उत्तराध्ययन सूत्र** में '**गुणाणामासओ दव्व**'[३] कहकर गुणों के पिण्ड को द्रव्य कहा गया है।

(२) **आचार्य उमास्वाति**[४], **कुंदकुंद-पूज्यपाद** आदि ने गुण के साथ पर्याय शब्द की संयोजना करते हुए कहा – द्रव्य वह है, जो गुण-पर्याय से युक्त है।

(३) **तत्त्वार्थसूत्र** में '**उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्तं सत् सद् द्रव्य लक्षणम्**'[५] कहकर द्रव्य का लक्षण सत् किया।

Scanned by CamScanner

(४) **पंचास्तिकाय**[६] में सप्तभंगी के आधार पर द्रव्य के स्वरूप को व्याख्यायित किया है।

(५) **धवला**[७] तथा **कषायपाहुड़** में त्रिकाली पर्यायों के पिण्ड को द्रव्य कहा गया है।

गुण –

उत्तराध्ययनसूत्र में गुण को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि – **एगदव्वसिया गुणा**[८] अर्थात् जो द्रव्याश्रित है, वह गुण है। **वैशेषिक सूत्र** में भी गुण को द्रव्याश्रित माना गया है। **आचार्य उमास्वाति** ने आगमिक परम्परा का अवलम्बन लेते हुए भी **वैशेषिक सूत्र** का उपयोग करके गुण का लक्षण किया **'द्रव्याश्रया निर्गुण गुणाः'**[९] अर्थात् गुण वह है, जो द्रव्य के आश्रित है, किन्तु स्वयं निर्गुण है। **द्रव्यानुयोगतर्कणा**[१०], **जैनसिद्धान्त दीपिका** आदि ग्रन्थों में द्रव्य के सहभावी धर्म को गुण कहा है।

पर्याय –

गुण की तरह पर्याय भी द्रव्य का धर्म है। गुण निरन्तर द्रव्य के साथ रहता है, किन्तु पर्याय बदलती रहती है अतः कहा गया **'अन्वयिनो गुणाः, व्यतिरेकिणः पर्यायाः'**।[११] अर्थात् गुण द्रव्य का अन्वयी धर्म है और पर्याय व्यतिरेकी। **उत्तराध्ययनसूत्र**'[१२] के अनुसार जो द्रव्य और गुण दोनों के आश्रित रहते हैं, उन्हें पर्याय कहते हैं। वाचक ने पर्याय को परिणाम के रूप में व्याख्यायित किया है।

अर्थात् परिणाम पर्याय का ही दूसरा नाम है। **जैन सिद्धान्त दीपिका** में पूर्व आकार का त्याग और उत्तर आकार के ग्रहण को पर्याय कहा है।

द्रव्य-गुण और पर्याय की संक्षिप्त विवेचना से सहज जिज्ञासा होती है कि इन तीनों में पारस्परिक क्या सम्बन्ध है ? ये एक दूसरे से पृथक् हैं या अपृथक् ? विभिन्न भारतीय दर्शनों में इस जिज्ञासा का समाधान अलग-अलग दिया गया है। जैन दर्शन में द्रव्य-गुण-पर्याय की भिन्नाभिन्नता को लेकर मुख्य रूप से चार पक्ष बनते हैं।

(१) द्रव्य-गुण-पर्याय का भेदाभेद
(२) द्रव्य-गुण का भेदाभेद
(३) द्रव्य-पर्याय का भेदाभेद
(४) गुण-पर्याय का भेदाभेद

द्रव्य-गुण-पर्याय का भेदाभेद –

जैन दर्शन के अनुसार द्रव्य, गुण और पर्याय में न तो एकान्ततः भेद है और न ही एकान्ततः अभेद है, अपितु भेदाभेद है। द्रव्य-गुण-पर्याय कथञ्चित भिन्न हैं। इस भेद को हम तीन प्रकार से समझ सकते हैं – नाम, संख्या और लक्षण।[१३]

(१) **नामकृतभिन्नता –** द्रव्य-गुण-पर्याय इत्यादि नामों से तीनों में परस्पर भिन्नता है।

Scanned by CamScanner

(२) **संख्याकृत भेद** – संख्या अर्थात् गणना। जैसे द्रव्य छः हैं, गुण चौबीस हैं और पर्याय अनन्त हैं।

(३) **लक्षणकृत भेद** – द्रव्य का लक्षण – गुण-पर्याय युक्त हैं। गुण का लक्षण – सहभावी धर्म है। पर्याय का लक्षण – क्रमभावी धर्म है।

इस प्रकार संज्ञा, संख्या व लक्षण के आधार पर तीनों में परस्पर भेद हैं। **द्रव्यानुयोग तर्कणा** में तीनों की भिन्नता को बताते हुए लिखा है – '**मुक्ताभ्यः श्वेततादिभ्यो मुक्तादाम यथा पृथक्**'।[१४] अर्थात् जैसे मोती की माला मोतियों से तथा श्वेतता आदि गुण से भिन्न है, वैसे ही द्रव्य से गुण-पर्याय भिन्न है।

कथंचित भिन्न होते हुए भी तीनों अभिन्न भी हैं। तीनों का परस्पर आधार-आधेय भाव सम्बन्ध है। द्रव्य के बिना गुण पर्याय का आश्रय नहीं होता है और गुण पर्याय के बिना द्रव्य को जाना नहीं जा सकता है, अतः तीनों अभिन्न हैं।

द्रव्य-गुण का भेदाभेद – जैन तत्त्वमीमांसा का एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है कि द्रव्य और गुण में क्या सम्बन्ध है ? वे परस्पर भिन्न हैं, अभिन्न हैं या भिन्नाभिन्न।

सन्मतितर्क प्रकरण में एकान्त भेद और एकान्त अभेद मानने वाले वैशेषिक और वेदान्तियों का पूर्व पक्ष के रूप में उल्लेख किया है और उनकी समीक्षा कर द्रव्य और गुण में भेदाभेद सिद्ध किया है।

वैशेषिक मत के अनुसार द्रव्य और गुण सर्वथा भिन्न होते हैं। उनके अनुसार '**उत्पन्नं द्रव्यं निर्गुणं निष्क्रियं च भवति**' अर्थात् उत्पन्न होते समय द्रव्य निर्गुण एवं निष्क्रिय होता है, तत्पश्चात् समवाय सम्बन्ध से गुण एवं कर्म का द्रव्य से सम्बन्ध होता है। **सन्मतितर्क प्रकरण** में भी पूर्व पक्ष की ओर से द्रव्य और गुण की पृथकता के दो आधारभूत हेतु बताये गये हैं –

१. लक्षण की भिन्नता
२. ग्राहक प्रमाण की भिन्नता[१५]

द्रव्य और गुण के लक्षण भिन्न-भिन्न हैं। द्रव्य गुणों का आधार है, जबकि द्रव्य गुण के आश्रित रहते हैं। द्रव्य गुणवान् होता है, जबकि गुण निर्गुण होते हैं। द्रव्य क्रियावान् होता है, जबकि गुण निष्क्रिय होते हैं। लक्षण की भांति दोनों के ग्राहक प्रमाण भी भिन्न-भिन्न हैं। घट-पट आदि द्रव्यों का ग्रहण एक से अधिक-चक्षु और स्पर्शन-इन दो इन्द्रियों से होता है, जबकि रूप, रस, स्पर्श आदि गुणों को ग्रहण एक इन्द्रिय सापेक्ष होता है। अतः दोनों के लक्षण व ग्राहक प्रमाण भिन्न-भिन्न होने से दोनों की पृथकता स्वतः प्रमाणित है।

अभेदवादी मत के अनुसार प्रत्येक द्रव्य की अखण्ड सत्ता है। वस्तु में गुणकृत विभाग नहीं होता है। जिस प्रकार पुद्गल से पृथक् वर्ण, गंध, रस व स्पर्श नहीं होते उसी प्रकार द्रव्य के अभाव में गुण और गुण के अभाव में द्रव्य के अस्तित्व की परिकल्पना ही संभव नहीं है, अतः दोनों में अभेद है।

Scanned by CamScanner

जैन आचार्यों ने इन एकान्त पक्षों की अवधारणा पर विस्तृत विवेचन कर यह सिद्ध किया है कि एकान्त भेद या एकान्त अभेद संभव नहीं हो सकता। **उमास्वाति, कुन्दकुन्द, सिद्धसेन दिवाकर, अकलंक, हरिभद्र** आदि के नाम इस सन्दर्भ में विशेष उल्लेखनीय हैं।

उमास्वाति ने '**गुणपर्यायवद् द्रव्यम्**' कहा है। यदि उन्हें दोनों की स्वतन्त्रता इष्ट होती तो संभव है कि वे द्रव्य के लक्षण में गुण और पर्याय का उल्लेख नहीं करते। उन्होंने तो यहाँ तक कह दिया कि गुण और पर्याय से रहित द्रव्य की बुद्धि से मात्र कल्पना की जा सकती है। वस्तु जगत् में इनका भेद संभव नहीं है। **कुंदकुंद** ने भी दोनों में अविनाभाव सम्बन्ध का उल्लेख करते हुए लिखा है –

दव्वेण विणा ण गुणा गुणोहिं दव्व विणा ण संभवदि।
अव्वदिरित्तो भावो दव्वगुणांणं हवदि तम्हा॥[१६]

सन्मतितर्क के कर्त्ता **आचार्य सिद्धसेन** ने भी द्रव्य और गुण के भेदाभेद से सम्बन्धित प्रश्न को सापेक्षता के आधार पर समाहित किया है। जैन मतानुसार प्रत्येक द्रव्य उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य से युक्त होता है। इसे ही आधार बनाकर भेदवादी कहते हैं कि द्रव्य का लक्षण है – ध्रुवता और गुण का लक्षण है उत्पाद-व्यय, अतः दोनों भिन्न हैं। **सिद्धसेन** के अनुसार ऐसा मानने पर अव्याप्ति दोष आता है, क्योंकि द्रव्य की तरह गुण भी स्थिर रहते हैं तथा गुण की तरह द्रव्य में भी उत्पाद-व्यय को गुण का लक्षण बताना अव्याप्ति दोष है। यह लक्षण किसी भी सत् पदार्थ पर लागू नहीं होता।[१७] अतः दोनों में एकान्त भेद मानना उचित नहीं है।

एकान्त भेद की तरह एकान्त अभेद मानना भी ठीक नहीं, क्योंकि एकान्त अभेदवाद में कर्त्ता, कर्म, करण आदि अनेक कारकों का और गति-आगति आदि अनेक क्रियाओं का प्रत्यक्षसिद्ध भेद हो जाता है तथा शुभाशुभ कर्म का फल, इहलोक-परलोक, ज्ञान-अज्ञान, बंध-मोक्ष आदि युग्मों की उपपत्ति भी नहीं हो सकती।[१८] **आचार्य अकलंक** के अनुसार द्रव्य और गुण में एकान्ततः अभेद मानने पर या तो गुण रहेंगे या द्रव्य। यदि केवल द्रव्य को मानें तो गुण के अभाव में द्रव्य निःस्वभाव हो जायेंगे, क्योंकि गुणों के आधार पर ही द्रव्य के स्वरूप का निर्धारण होता है और यदि केवल गुणों की सत्ता मानें तो द्रव्य के अभाव में गुण निराश्रय हो जायेंगे। अतः गुणों का भी अभाव हो जायेगा[१९] अतः द्रव्य-गुण को सर्वथा अभिन्न मानना भी उचित नहीं है।

आचार्य सिद्धसेन को भी द्रव्य-गुण के एकान्त भेद की तरह एकान्त अभेद मान्य नहीं है। सामान्य के अभाव में विशेष का और विशेष के अभाव में सामान्य का सद्भाव उसी तरह संभव नहीं जिस तरह घट के अभाव में मिट्टी और मिट्टी के अभाव में घट आदि।[२०] अभेदवाद में एक समान दो कृष्ण पदार्थों का चक्षु के साथ सम्बन्ध होने पर 'यो कृष्ण वर्ण वाले हैं' – इतना तो बोध हो जाता है, पर वह किसी दूसरे कृष्ण पदार्थ से अनन्त या असंख्य गुण कृष्ण है, इस भेद का ज्ञान कैसे सिद्ध होगा ?

इसी प्रकार दो फलों का रसनेन्द्रिय से सम्पर्क होने पर उनके रस का बोध हो जाता है, पर पहले

Scanned by CamScanner

की अपेक्षा यह मधुर या अम्ल है, यह बोध कैसे होगा ?[२१] अतः द्रव्य और गुणों के बीच एकान्त भेद या एकान्त अभेद न मानकर, कथंचित भेदाभेद ही मानना चाहिए।

द्रव्य-पर्याय का भेदाभेद –

द्रव्य और गुण की भाति जैन आचार्यों ने द्रव्य और पर्याय में भेदाभेद का समर्थन किया है। आयारो में **'जे आया से विन्नाया, जे विन्नाया से आया'**[२२] कहकर सूत्रकार ने आत्मा और ज्ञान की अभिन्नता का प्रतिपादन किया है। सामान्यतया देखने पर यह सूत्र अभेद का वाचक प्रतीत होता है, पर जैसा कि निर्युक्तिकार ने कहा है – **'णत्थि जिणवयणं णयविहीणं'** कोई भी जिन वचन निरपेक्ष नहीं होता, अतः **आयारो** का यह सूत्र भी सापेक्षता की दृष्टि से ही ग्राह्य है अर्थात् प्रत्येक आत्मा में ज्ञान का सद्भाव कुछ न कुछ अंशों में होता ही है। वह त्रिकाल में भी ज्ञानशून्य नहीं होता, अतः दोनों में अभेद है। पर ज्ञान आत्मा का परिणाम विशेष है, जो बदलता रहता है, अतः पर्याय दृष्टि से दोनों में भेद है।

भगवती सूत्र में **'आया भंते सिय नाणे, सिय अन्नाणे, नाणे पुण नियमं आया'**[२३] कहकर सूत्रकार ने आत्मा को ज्ञान से कथंचित भिन्न और कथंचित अभिन्न कहा है। कुंदकुंद ने द्रव्य और पर्याय के अविनाभाव का प्रतिपादन करते हुए यही लिखा है –

पज्जयविजुद दव्वं दव्वविजुत्ता य पज्जया णत्थि।
दोण्हं अणण्णमूदं भावं समणा परूविंति॥ [२३]

टीकाकार **अमृतचन्द्र** के अनुसार जिस प्रकार दूध, दही, घी आदि से भिन्न गोरस नहीं होता, वैसे ही पर्याय से रहित द्रव्य नहीं होता।

सिद्धसेन दिवाकर के अनुसार द्रव्यार्थिक नय का विषय है – द्रव्य और पर्यायार्थिक नय का विषय है – पर्याय। दोनों नय अलग-अलग मिथ्यादृष्टि हैं। दोनों में से किसी एक नय का विषय सत् नहीं बन सकता। सामान्य और विशेष दोनों मिलकर ही सत् बनते हैं। अतः द्रव्य-पर्याय परस्पर संबद्ध है।

द्रव्य से रहित पर्याय और पर्याय से रहित द्रव्य का अस्तित्व ही नहीं होता। इसी बात को **आवश्यकनिर्युक्ति** में इस प्रकार कहा गया है –

जं जं जे जे भावे परिणमइ पओग वीससादव्वं।
तं तह जाणाह जिणे अपज्जवे जाण नत्थि॥

अर्थात् प्रयोग और स्वभाव से जो-जो द्रव्य जिस-जिस भाव में परिणत होता है, केवली उसे उसी रूप में जानते हैं। पर्याय रहित द्रव्य को नहीं जाना जा सकता। इसका तात्पर्य यही है कि पर्याय रहित द्रव्य होता ही नहीं है।

Scanned by CamScanner

गुण-पर्याय का भेदाभेद –

गुण और पर्याय के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में दार्शनिकों में मतैक्य नहीं है। **उमास्वाति** और **कुंदकुंद** ने गुण के अतिरिक्त पर्याय को भी द्रव्य के लक्षण में सम्मिलित किया है, अतः स्पष्ट है कि वे दोनों में भेद, स्वीकार करते हैं। **पूज्यपाद** ने भी गुण और पर्याय में भेद, स्वीकार किया है। '**गुणाः के पर्यायः अन्वयिनो गुणाः व्यतिरेकिनः पर्यायः** ।' **पूज्यपाद** ने द्रव्य-गुण और पर्याय का स्वरूप बताने वाली एक प्राचीन गाथा भी उद्धृत की है –

गुण इति दव्वविहीणं दव्वविकारो हि पज्जवो भणिदो ।
तेहि अणूणं दव्वं अजुदपसिद्धं हवे दव्वं ॥[२७]

यह गाथा किस ग्रंथ की है, बतलाना कठिन है। पर **पूज्यपाद** के ग्रन्थ में उद्धृत होने से इसकी प्राचीनता असंदिग्ध रूप से मानी जा सकती है। इस गाथा में उन्होंने गुण और पर्याय का अर्थभेद सिद्ध किया है। **अमृतचन्द्र, वादी-देव, विद्यानन्द** आदि ने गुण एवं पर्याय में भेद स्वीकार किया है। गुण-पर्याय धर्म हैं। धर्मी धर्म से कथंचित् भिन्न होता है। उदाहरणतः जीव द्रव्य है, ज्ञान उसका गुण है तथा घटज्ञान, पटज्ञान उसकी पर्याय है। धर्म-अधर्म द्रव्य है, गति-स्थिति में सहायक होना उसका गुण है तथा गति-स्थितिशील पदार्थों के साथ सम्बन्ध होना उनकी पर्याय है। पुद्गल द्रव्य है, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण ये उसके गुण हैं तथा घट-पट आदि उसकी पर्याय हैं। काल द्रव्य है वर्तना उसका गुण है, **सेकेस्त्रह्यण्ड**, मिनट, घण्टा आदि उसकी पर्याय हैं। गुण-पर्याय ये दो पृथक् शब्द ही उसके भेद की सूचना दे रहे हैं।

इस सन्दर्भ में **सिद्धसेन दिवाकर** का एक नया प्रस्थान जैन तत्त्वज्ञान में शुरू होता है। उन्होंने गुण और पर्याय इन दोनों शब्दों को एकार्थक स्थापित किया है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है –

दो उण णया भगवया दव्वट्ठि-पज्जवट्ठिया नियया ।
एत्तो य गुणविसेसे गुणट्ठियणओ वि जुज्जंतो ॥
जं पुण अरिहया तेसु तेसु सुत्तेसु गोयमाईण ।
पज्जवसण्ण णियमा वागरिया तेण पज्जादा ॥२८

अर्थात् भगवान ने द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक ये दो ही नय आगम में बताये हैं। यदि पर्याय से पृथक् गुण होता तो आगम में गुणार्थिक नय की भी चर्चा होती। अर्हतों ने उन-उन सूत्रों में गौतम आदि के समक्ष पर्याय संज्ञा निश्चित करके उसी का विवेचन किया है, अतः ऐसा मानना चाहिए कि पर्याय से भिन्न गुण नहीं हैं। **द्रव्यानुयोग तर्कणा**[२९] में भी **सन्मति** के इस कथन का समर्थन हुआ है। जैसे 'तैल की धारा' इस वाक्य में तैल और धारा दो पृथक् वस्तु नहीं है, वैसे ही गुण और पर्याय भी परमार्थतः भिन्न नहीं हैं। **आचार्य हरिभद्र** ने भी इसी अभेदवाद का समर्थन किया। **आचार्य हेमचन्द्र**[३०] ने तो प्रमाण के विषय का निरूपण करते समय सूत्र में गुण पद को स्थान ही नहीं दिया। और न ही गुण पर्याय शब्दों के अर्थ विषयक भेदाभेद की चर्चा की। इससे स्पष्ट होता है कि वे भी अभेद के ही समर्थक हैं। **यशोविजयजी** ने भी इसी अभेदपक्ष को स्थापित किया।

Scanned by CamScanner

आचार्य अकलंक[31] ने गुण और पर्याय की एकार्थकता भिन्न प्रकार से सिद्ध की। उनके अनुसार द्रव्य के दो रूप हैं – सामान्य और विशेष। सामान्य, उत्सर्ग, अन्वय और गुण ये एकार्थक हैं। इसी तरह विशेष, पर्याय और भेद ये तीनों एकार्थक हैं। सामान्य का ग्राहक द्रव्यार्थिक नय और विशेष का ग्राहक पर्यायार्थिक नय कहलाता है। गुण द्रव्य का ही सामान्य रूप है, अतः उसके ग्रहण के लिए द्रव्यार्थिक से भिन्न गुणार्थिक नामक स्वतंत्र नय की आवश्यकता ही नहीं है।

अकलंक ने '**गुणपर्ययवद् द्रव्यं**' सूत्र की व्याख्या में लिखा है – गुण ही पर्याय हैं, क्योंकि गुण और पर्याय दोनों में समानाधिकरण है। यहाँ प्रश्न उपस्थित किया गया है कि जब दोनों एकार्थक हैं तो '**गुणपर्ययवद् द्रव्यं**' न कहकर '**गुणवद् द्रव्यं**' या '**पर्यायवद् द्रव्य**' ऐसा निर्देश करना चाहिए था। इसका समाधान करते हुए स्वयं वार्तिककार लिखते हैं कि वस्तुतः द्रव्य से पृथक् गुण उपलब्ध नहीं होते। द्रव्य का परिणमन ही पर्याय है और गुण उसी परिणमन की एक अभिव्यक्ति है, अतः दोनों अभिन्न हैं, किन्तु वैशेषिक दर्शन में स्वीकृत स्वतन्त्र गुण की अवधारणा का निराकरण करने के लिए सूत्र में गुण पद का प्रयोजन किया गया है। तत्त्वतः दोनों में भेद नहीं है।

आगम साहित्य में भी मूलतः द्रव्य पर्याय की ही चर्चा है, यद्यपि कहीं-कहीं गुण शब्द का भी प्रयोग हुआ है। पर वहाँ प्रयुक्त गुण शब्द का अभिप्राय यह नहीं है जो प्रस्तुत प्रसंग में विवक्षित है। उदाहरण के लिए **आयारो** का एक सूत्र है '**जे गुणे से आवहे, जे आवहे से गुणे**'[32] यहाँ गुण का अर्थ इन्द्रिय विषय है। इसी तरह **भगवती सूत्र** में **पंचास्तिकाय** के संदर्भ में 'गुण' शब्द का प्रयोग अनेकशः हुआ है, पर वहाँ गुण का अर्थ सहभावी धर्म के अर्थ में न होकर, उपकारक शक्ति के अर्थ में है।

गुण और पर्याय एकार्थक हैं या भिन्नार्थक ? चिन्तन करने पर फलित होता है कि गुण और पर्याय दो शब्द हैं, अतः इनमें भेद होना चाहिए, क्योंकि गुण मात्र द्रव्याश्रित होते हैं, जबकि पर्याय द्रव्य और गुण दोनों के आश्रित हैं। पुद्गल द्रव्य है, स्पर्श, रस आदि उसके गुण हैं। स्पर्श के भेद स्पर्श की पर्याय है। एक ही वस्तु चक्षु का विषय बनती है तब रूप बन जाती है। रसना से रस, घ्राण से गंध बन जाती है, वस्तु की ये पर्यायें व्यवहारश्रित हैं। यदि गुण और पर्याय में अन्तर होता तो संभिन्नस्रोतोपलब्धि के समय एक ही इन्द्रिय से सारे विषयों का ज्ञान कैसे होता तथा एकेन्द्रियादि जीव अपना व्यवहार कैसे चलाते। जीव अपने व्यवहार के लिए इनको पृथक् कर लेता है। अतः गुण और पर्याय को व्यवहार के स्तर पर भिन्न माना जा सकता है। निश्चयतः वे दोनों अभिन्न हैं। **आचार्य सिद्धसेन** ने तो गुण-पर्याय में ही अभेद कहा, किन्तु **आचार्य सिद्धसेनगणी** ने तो निश्चयतः द्रव्य-पर्याय को भी अभिन्न मानकर नय से भिन्नता का प्रतिपादन किया –

अभिन्नांशमतं वस्तु तथोभयमयात्मकम्।
प्रतिपत्तेरूपायेन नयभेदेन कथ्यते ॥[33]

अतः यह निर्विवाद स्वीकार किया जा सकता है कि द्रव्य-गुण-पर्याय में मौलिक भेद नहीं है। व्यवहारतः भेद व परमार्थतः अभेद अर्थात् भेदाभेद है।

Scanned by CamScanner

संदर्भ

१. तत्त्वार्थसूत्र, ५/२९ उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्
२. भगवतीसूत्र, १/४४०
३. उत्तराध्ययनसूत्र, २८/६
४. तत्त्वार्थसूत्र, ५/३७
५. वही, ५/२९
६. पंचास्तिकाय, १४
७. धवला, १/१/१३६, कषाय पाहुड़ १/१/१४
८. उत्तराध्ययनसूत्र, २८/६
९. तत्त्वार्थसूत्र, ५/४०
१०. द्रव्यानुयोगतर्कणा २/२ सहभावी गुणो धर्मः
११. सर्वार्थसिद्धि, पृ.२३७
१२. उत्तराध्ययनसूत्र. २८/६
१३. द्रव्यानुयोगतर्कणा, २/१६
१४. वही २/३
१५. सन्मतितर्क प्रकरण, ३/८
१६. पंचास्तिकाय, १२
१७. सन्मतितर्क, ३/२३
१८. आप्तमीमांसा, का.२३, २४
१९. तत्त्वार्थवार्त्तिक, ३/२/६
२०. सन्मतितर्क प्रकरण (वृत्ति.) पृ.६२७, ६२८
२१. सन्मतितर्क प्रकरण, ३/१९
२२. आयारो, ५/१०४
२३. भगवती, १२/२०६
२४. पंचास्तिकाय, गा.१२
२५. सन्मतितर्क प्रकरण, १/१२
२६. आवश्यक निर्युक्ति
२७. सर्वार्थसिद्धि, ५/३८, पृ.३६० पर उद्धृत
२८. सन्मतितर्क प्रकरण, ३/१०, ११
२९. द्रव्यानुयोग तर्कणा, २/११
३०. प्रमाणमीमांसा, १/१/३०
३१. तत्त्वार्थवार्तिक, ५/३८
३२. आयारो, १/९३
३३. तत्त्वार्थाधिगम सूत्र टीका, पृ.३९४

Scanned by CamScanner

लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर
अहमदाबाद

Scanned by CamScanner

अनुक्रमणिका

१. नय, अनेकान्त और विचार के नियम	आचार्य श्री महाप्रज्ञजी	१
२. जैन दार्शनिक सिद्धान्त	सिद्धेश्वर भट्ट	६
३. जैन दर्शन में अस्तित्व की अवधारणा	समणी मंगलप्रज्ञा	२४
४. द्रव्य-गुण पर्याय : भेदाभेद	समणी ऋजुप्रज्ञा	३०
५. जैन दर्शन की द्रव्य, गुण एवं पर्याय की अवधारणा का समीक्षात्मक विवेचन	सागरमल जैन	३८
६. पर्याय की अवधारणा व स्वरूप	देवेन्द्रकुमार शास्त्री	५२
७. जैनदर्शन में पर्याय का स्वरूप	वीरसागर जैन	६८
८. शुद्धपर्याय का स्वरूप क्या है ?	नीतू जैन	७४
९. 'पर्याय' की अवधारणा में निहित दार्शनिक मौलिकता एवं विशेषता	सुदीप जैन	७८
१०. जैनदर्शन में द्रव्य-गुण-पर्याय भेदाभेदवाद की अवधारणा	अशोक कुमार जैन	८७
११. सत्ता का द्रव्यपर्यायात्मक पर्याय	राजकुमारी जैन	९७
१२. द्रव्य, गुण और पर्याय का पारस्परिक सम्बन्ध : सिद्धसेन दिवाकरकृत 'सन्मति-प्रकरण' के विशेष सन्दर्भ में	श्रीप्रकाश पाण्डेय	११४
१३. निश्चयनय और व्यवहारनय के आलोक में वर्णित पर्याय की अवधारणा	जयकुमार उपाध्ये	१२७
१४. पर्याय मात्र को ग्रहण करने वाला नय : ऋजुसूत्रनय	अनेकान्त कुमार जैन	१३४
१५. जैन दर्शन में पर्याय	कुलदीप कुमार	१४२
१६. पज्जमूढा हि परसमया	राकेश कुमार जैन	१४९
१७. पर्यायाधिकार	ब्र० कु० कौशल	१६५
१८. क्रमबद्धपर्याय	हुकमचन्द भारिल्ल	१७७
१९. जैनदर्शन में बौद्धसम्मत 'पर्याय' की समीक्षा	भागचन्द्र जैन	१८५
२०. जैन साधना पद्धति : मनोऽनुशासनम्	हेमलता बोलिया	१९५

Scanned by CamScanner